इकाई 5 उपनिषद साहित्य का परिचय

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 उपनिषद का तात्पर्य

- 5.2.1 उपनिषद शब्द का अर्थ
- 5.2.2 उपनिषद् एवं वेदान्त
- 5.2.3 ज्ञान का स्वरूप

5.3 उपनिषदों का स्वरूप

- 5.3.1 संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्

5.4 नाम एवं संख्या

- 5.4.1 ईशावास्योपनिषद्
- 5.4.2 केन उपनिषद्
- 5.4.3 कठ उपनिषद्
- 5.4.4 मुण्डक उपनिषद्
- 5.4.5 माण्डूक्य उपनिषद्
- 5.4.6 प्रश्न-उपनिषद्
- 5.4.7 श्वेताश्वतर उपनिषद्
- 5.4.8 तैत्तिरीय उपनिषद्
- 5.4.9 ऐतरेय उपनिषद्
- 5.4.10 छान्दोग्य उपनिषद्
- 5.4.11 बृहदारण्यक उपनिषद्

5.5 उपनिषदों का रचना काल:-

5.6 उपनिषदों के प्रवचनकर्त्ता

- 5.6.1 उपनिषदों की भाषा-शैली
- 5.6.2 उपनिषदों के प्राचीन भाष्य

5.7 विवेचन विधि

- 5.7.1 प्रतीकात्मक विधि
- 5.7.2 निरुक्त विधि
- 5.7.3 सूत्र विधि
- 5.7.4 उपमान विधि
- 5.7.5 संवाद विधि
- 5.7.6 समन्वय विधि
- 5.7.7 विश्लेषण विधि
- 5.7.8 अधिदैवत विधि

5.8 उपनिषदों का प्रतिपाद्य

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

5.8.1 श्रेय और प्रेय
5.8.2 'भूमा' का साक्षात्कार
5.8.3 सृष्टि विज्ञान
5.8.4 आत्मा
5.8.5 ब्रह्म
5.9 सारांश
5.10 पारिभाषिक शब्दावली
5.11 सहायक उपयोगी पाठ्यसमग्री
5.12 बोध प्रश्न

5.0 उद्देश्य

उपनिषदों का स्वरूप तात्पर्य एवं प्रतिपाद्य नामक इस ईकाई को जान लेने के बाद आप-

- उपनिषद् शब्द का अर्थ, नाम एवं इनकी संख्या की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- वेद में प्रतिपादित विषयों के निष्कर्षात्मक सन्देशों को समझ सकेंगे।
- भारतीय ज्ञान परम्परा में उपनिषदों का महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।
- उपनिषदों में प्रतिपादित व्यावहारिक एवं परमार्थिक विद्याओं के रूपरेखा से परिचित हो सकेंगे।
- गूढ़ात्मक ज्ञान कहे जाने वाले प्रतिपादित सिद्धान्तों को आसानी से बोध कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परम्परा में अन्य शास्त्र ज्ञान के साधन एवं प्रयोग की बात करते हैं किन्तु साध्य रूप में ज्ञान क्या है उसका स्वरूप एवं प्रतिपाद्य क्या है, इसका ज्ञान हमें उपनिषदों से प्राप्त होता है। उपनिषदें भारतीय ज्ञान सम्पदा की अमूल्य निधि है भारतीय सभ्यता का समग्र वैचारिक विकास उपनिषदों के आधार पर खड़ा हुआ है। यूनेस्को वर्ड हेरिटेज ने भारत के विरासत के रूप में योग एवं श्रुति परम्परा को स्वीकार्य किया है।

वस्तुतः विश्व को जो कुछ भी भारत ने दिया है उसमें उपनिषदों की केन्द्रीय भूमिका है। यहाँ तक कि योग के सिद्धान्तों एवं उसके प्रयोग उपनिषदों से प्राप्त होते हैं। ज्ञान-विज्ञान के सभी पक्ष हम उपनिषदों के बीजरूप में प्राप्त होते हैं। ऐसे में उपनिषद् विद्याकी समझ अत्यन्त उपयोगी एवं आवश्यक है।

5.2 उपनिषद का तात्पर्य

अमरकोषकार उपनिषद् शब्द का अर्थ- 'धर्मे रहस्युपनिषत् स्यात्' के रूप में करते हैं। यहाँ उपनिषद् शब्द गूढ़ धर्म और रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इन्हें 'ब्रह्म' के प्रतिपादक वेद के शिरो भाग अथवा अन्त में होने से ये वेदान्त या उत्तरमीमांसा भी कही जाती है। ब्रह्म ज्ञान, आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या- ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं। संहिता, ब्राह्मण, अरण्यक में से ही ब्रह्म प्रतिपादक भागों को पृथक कर उनको 'उपनिषद्' कहा गया।

परम्परा में उपनिषद् ग्रन्थ की परिभाषा स्पष्ट एवं सार्थक होते हुए भी आधुनिक काल में पश्चिमी एवं भारतीय विद्वानों ने नये सिरे से विचार करने का प्रयास किया है। बहुतेरे योरोपीय विद्वान तथा उनके मतों में भारतीय अनुयायी इस बात पर सहमत हैं कि उपनिषद् का अर्थ वह ज्ञान है जो शिष्य अपने गुरु के सानिध्य (समीप) बैठ कर प्राप्त करता है।

इस सन्दर्भ में ए. मैक्समूलर ने अपने अध्यन से यह सिद्ध करना चाहा है कि उपनिषद् शब्द निम्नलिखित चार अर्थों में प्रयुक्त हुआ है-

i. गुह्य अथवा रहस्यमय व्याख्या, सत्यात्मक हो अथवा असत्य,

ii. इस व्याख्या से प्राप्त ज्ञान,

iii. इससे प्राप्त ज्ञानवान् के लिए पालन योग्य नियम अथवा व्रत,

iv. वे ग्रन्थ जिनमें इस प्रकार का ज्ञान निहित हो।

अपने विचारों के समर्थन में उन्होंने आरण्यक तथा उपनिषदों से मूल्यवान् उद्धरण दिये हैं किन्तु इस सन्दर्भ में कुछ भारतीय विद्वानों का मन्तव्य कुछ और ही हैं। यहाँ मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि उपनिषदों में उपनिषद् शब्द किन-किन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है बल्कि विचारणीय प्रश्न यह है कि उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ क्या है? जिससे उपनिषदों के लक्ष्य का पता चलता है।

5.2.1 उपनिषद शब्द का अर्थ

i. उपनिषद् शब्द 'सद्' धातु के पूर्व 'उप' और 'नि' उपसर्गों के योग से बनता है जिनमें 'उप' का अर्थ समीप तथा 'नि' का अर्थ नीचे होता है; 'सद्' का अर्थ शिक्षा है। इस विवेचना से तात्पर्य निकलता है कि शिष्यवृंद गुरु के समीप नीचे बैठकर शिक्षा ग्रहण करते हैं।

ii. उपनिषद् शब्द उप+नि+सद् इन तीन शब्दों के योग से बनता है इनमें 'सत्' शब्द क्रिया वाचक है और 'उप' तथा 'नि' उपसर्ग हैं। व्याकरण के अनुसार उनसे एक समूचा अर्थ शब्द उपनिषद् बनता है और यह भी सही है कि इस शब्द का धातु अर्थ समीप तथा नीचे बैठना, शिष्य का गुरु के समीप, उनसे नीचे बैठकर अध्ययन करना होता है। योरोप की पठन-पाठन विधि जो भी रही हो किसी भारतीय को यह बताने की जरूरत नहीं कि शिष्य का आसन सदैव गुरु के आसन से नीचे होना चाहिए और यह भारत में सदैव होता ही आ रहा है।

iii. आर्चाय शंकर ने उपनिषद् शब्द की व्याख्या उपनिषद् भाष्यों में प्रगट किया है। 'कठोपनिषद् भाष्य' के आरम्भ में ही वे लिखते हैं कि, "विशरण (नाश) गति और अवसादन (शिथिल) करना" इन तीनों अर्थों वाली तथा 'उप' तथा 'नि' उपसर्गपूर्वक एवं विनय प्रत्यान्त 'सद्' धातु से उपनिषद् रूप बनता है। शंकराचार्य का आशय है कि जब मोक्ष चाहने वाले व्यक्ति जीवन से जुड़ी सभी कामनाओं से विरक्त होकर इस विद्या के पास जाते हैं तथा उसका निष्ठापूर्वक परिशीलन करते हैं तो यह विद्या उनके अज्ञान का विशरण अर्थात् समाप्त कर देती है। इस प्रकार यह विद्या व्यक्ति को परम तत्त्व से जोड़ती है, अतः यह 'ब्रह्मविद्या' कही जाती है। ब्रह्म आन्तरिक रूप से जीव में 'आत्मारूप' में स्थित है अतः 'ब्रह्मविद्या' 'आत्मविद्या' भी कही जाती है।

शंकराचार्य इस बात को और स्पष्ट करते हुए 'तैत्तिरीयोपनिषद्' की भाष्यभूमिका में लिखते हैं कि अपना सेवन करने वाले पुरुषों के गर्भ, जन्म, जरा आदि का पूर्ण अवसादन करने के कारण उपनिषद् शब्द से विद्या कही गयी है अथवा 'ब्रह्म' के समीप के समीप ले जाने वाली होने के कारण यह विद्या उपनिषद् विद्या है या जो मनुष्य के अज्ञान को हटाकर उसे 'ब्रह्म' को प्राप्त करा देती है। ज्ञान की यह शक्ति उपनिषद् के वाक्यों में ही विद्यमान है।

iv. वास्तव में संहिताओं (मन्त्र भाग), ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों चारों का ऐसा अटूट सम्बन्ध है कि चारो में चारों सम्मिलित पाये जाते है। जैसे उदाहरण के लिए ईशावस्योपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद की "माध्यन्दिनसंहिता" यानी मंत्र भाग का अन्तिम अध्याय ही है। तैत्तिरीय संहिता का शेषांस तैत्तिरीय ब्राह्मण है और तैत्तिरीय ब्राह्मण के अंतिम भाग तैत्तिरीय आरण्यक, तथा तैत्तिरीय उपनिषद् है। मैत्रायणी और काठक संहिताओं से अधिक ब्राह्मणादि अब तक सम्मिलित ही हैं। छांदोग्य उपनिषद् में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् तीनों हैं। यही बात बृहदारण्यक की भी है। इस सन्दर्भ में पं. रामगोविन्द त्रिवेदी का कथन महत्त्वपूर्ण है कि, "साधारण क्रम यह मालूम पड़ता है कि संहिता का उत्तरांश ब्राह्मण है, ब्राह्मण का शेष आरण्यक है और आरण्यक का शेषांश उपनिषद् हैं। इस क्रम से और विशेष क्रम से भी ज्ञात होता है कि वेद-रूपी एक ही शरीर के सब अंश हैं। सबको लेकर वेद पूर्ण होता है। यही कारण है कि सनातन धर्मी इन मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् आदि चारों का वेदत्व और नियत्व मानते हैं। जैसे ऋग्वेद के मंत्र यजुः, साम और अथर्व संहिताओं में पाये जाते हैं वैसे ही ब्राह्मणों में भी पाये जाते हैं। जैसे ऋग्वेदीय ऋचाओं (मंत्रो) को सामवेद में गेय बताया गया है, वैसे ही ब्राह्मणादि में निर्वचन किया गया है। फलतः ये चारों ही वेद हैं और चारो के ही द्रष्टा, स्मारक तथा प्रचारक ऋषि-महर्षि हैं। आध्यात्मिक अर्थ करने पर सभी ज्ञानमय हैं, अद्वैतवादी है; आधिदैविक अर्थ करने पर सभी सकाम और निष्काम यज्ञ-परक हैं तथा आधिभौतिक अर्थ करने पर सभी में इतिहास सम्मिलित है।"

v. उपनिषदों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वेदान्त, पराविद्या, ब्रह्मविद्या, आध्यात्म, आत्मविद्या एवं गुप्त विद्या इत्यादि उपनिषद् के विभिन्न नाम हैं तथापि सबको उपनिषद् नाम सामान्य है और जिन ग्रन्थों में इस विद्या का उपदेश है। उन्हें भी उपनिषद् कहते हैं इसप्रकार उपनिषद् की परिभाषा निश्चित कर लेने पर उपनिषदों की संख्या और वर्गीकरण पर विचार करना उचित होगा।

5.2.2 उपनिषद् एवं वेदान्त

ध्यातव्य है भारतीय परम्परा में मंत्र अर्थात् संहिता के साथ ब्राह्मण ग्रन्थ आरण्यक और उपनिषद् सभी एक ही वैदिका ज्ञान राशि के अभिन्न अंग अथवा शाखाएँ हैं। महर्षि आपस्तम्ब जो कि स्मृतिकार हैं ने स्पष्ट कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण दोनों उपनिषद् में आते हैं। अतः उपनिषद् भी 'वेद' पद वाच्य हुए। उपनिषदों के अन्तःसाक्ष्य से पता चलता है कि उपनिषदों का वेदान्त भी कहते हैं और वेदान्त तथा उपनिषद् पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होते थे। श्वेताश्वरोपनिषद् में यह कहा है कि-

वेदान्ते परमं गुह्यं पुरा कल्पे पचोदितम्।
माप्र शान्ताय दातव्यं ना पुत्रयाशिष्याय ना पुमः।।

वेदान्त में आर्थात् उपनिषदों में परम गुह्य इस विद्या को पूर्वकल्प में प्रेषित किया गया था, जिसका चित्त अत्यन्त शांत न हो उस पुरुष को या जिसे इस परम्परा से अत्यान्तिक भावनात्मक लगाव न हो (अर्थात् जो पुत्र या शिष्य न हो) उसे यह ज्ञान नहीं देना चाहिए। ऐसा वेद की शाखा एवं स्वाध्याय रक्षा के लिए कहा गया है। वेदार्थ ज्ञान की प्राप्ति से उन्हें वंचित करने के लिए नहीं। चूंकि मूलरूप में वैदिक ज्ञानराशि की रक्षा एवं प्रकट एक कठोर अनुशासन एवं समृद्ध परम्परा की मांग रखती है अतः इस प्रकार की सावधानी का संकेत किया गया। वेदार्थ ज्ञानराशि को प्रगट करने वाले समूचे भारतीय धर्मशास्त्र यथा- पुराण, रामायण, महाभारत तथा काव्य सभी व्यक्तियों के लिए खुले हैं।

अब तक के इन विवेचनाओं के आलोक में यह कहा जा सकता है कि व्यवधान रहित (उप) सम्पूर्ण (नि) ज्ञान (षद्) ही उपनिषद् के अवयव है अर्थात् वह उच्च ज्ञान जो ज्ञान वस्तु से अभिन्न रूप में देश, काल तथा वस्तु की सीमाओं से रहित परिपूर्ण ज्ञान है। इसलिए जब तक ज्ञान के स्वरूप का ठीक-ठीक विचार न कर लिया जाएगा, तब तक उपनिषद् क्या है, यह बात स्पष्ट नहीं हो सकेगी।

5.2.3 ज्ञान का स्वरूप

पहली बात तो यह है कि किसी भी पदार्थ के यथार्थ स्वरूप का ठीक-ठीक निश्चय करने में ज्ञान ही अन्तिम निर्णायक है। यदि कोई वस्तु रहे और उसे जानने वाला कोई न हो तो हम कैसे कह सकते हैं कि वह वस्तु है। हमारा सम्पूर्ण व्यवहार ज्ञान के आधार पर चलता है। वस्तु को जाना जाए इसके लिए वस्तु के ज्ञान की आवश्यकता है किन्तु ज्ञान के साथ यह शर्त पूरी तरह लागू नहीं हैं। ज्ञान, 'वस्तु' के बिना भी उपलब्ध रहता है।

उदाहरण के लिए किसी वस्तु की सत्ता का ज्ञान सर्वप्रथम इन्द्रियों के जुड़ने से होता है, और इसी प्रकार जब इन्द्रियां मन से, मन बुद्धि से और बुद्धि का सम्पर्क ज्ञानस्वरूप आत्मा से होता है तो ज्ञान निश्चित होता है। यदि किसी वस्तु का हमें ज्ञान न हो तो हम कहते हैं कि उस वस्तु के बारे में हमारा अज्ञान है अतः अज्ञान का अनुभव भी ज्ञान है। अतः कोई वस्तु है तो उसका ज्ञान होता है। ज्ञान जिससे होता है वह ज्ञान का साधन है। साधन यदि विश्वास योग्य है तो उस साधन को प्रमाण कहते हैं और साधन के उपयोग कर्त्ता को ज्ञाता कहते हैं। अतः किसी ज्ञान की प्रक्रिया में वस्तु, ज्ञान तथ ज्ञाता तीन पक्ष हैं। इन तीनों पक्षों के एकीकृत रूप को अखण्ड ज्ञान कहते हैं।

दूसरी बात तो यह कि ज्ञान स्वयं-प्रकाश है। ज्ञान प्राप्त करने वाले व्यक्ति अनेक हो सकते हैं, उनकी मान्यताएं, क्षमताएं भी अलग-अलग हो सकती हैं परन्तु इन सभी का ज्ञान एक ही होता है। उदाहरण के लिए, कम प्रकाश में स्थित शाखाविहीन धड़, भिन्न-भिन्न मनुष्य को चोर, सिपाही, मनुष्य अथवा भूत के रूप में प्रतीत हो सकते हैं, परन्तु ज्ञान रूप मे ंतो सबका एक ही ज्ञान होगा कि यह ठूँठा पेड़ है। इसलिए ज्ञान स्वयं प्रकाश है। उसे प्रकाशित करने के लिए किसी अतिरिक्त वस्तु पर निर्भर नहीं होना पड़ता।

तीसरी बात यह है कि ज्ञान सभी कालों में एक ही रहता है ज्ञान में भूत, भविष्य, वर्तमान का भेद नहीं होता जो ज्ञान भूत में सत्य था वह भविष्य में भी सत्य ही रहेगा। अतः ज्ञान काल में बंधा नहीं है स्वयं काल ही ज्ञान के अन्तर्गत है।

इसी प्रकार ज्ञान देश (स्थान) से आबद्ध नहीं है। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण की कल्पना किसी ग्रह (ध्रुव या सूर्य) के सापेक्ष की जाती है। अतः दिशाओं की कल्पना वस्तुनिष्ठ नहीं संवित्मात्र (चेतना) पर आधारित है।

अब हम यह देख चुके हैं कि देश एवं काल का भेद ज्ञाता सापेक्ष है अतः देश-काल में उत्पन्न ज्ञान और उसका विषय भी अकल्पित कैसे होगा? अतः ज्ञान अपने विषयों से भी सीमित नहीं होता। ज्ञान अपने विषय से व्यापक है।

अतः अब हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि ज्ञान में ज्ञेय और ज्ञाता दोनों ही एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं परन्तु ज्ञान दोनों की या दोनो में से किसी एक की अथवा किसी अन्य की अपेक्षा रखे बिना स्वतः सिद्ध है। ज्ञान का कोई विरोधी नहीं स्वयं अज्ञान भी ज्ञान के द्वारा जाना जाता है। उपनिषदों में इसी प्रकार के ज्ञान संग्रहित हैं।

5.3 उपनिषदों का स्वरूप

वेद के स्वरूप के साथ ही उपनिषद् का स्वरूप उभर कर सामने आता है। उपनिषद् मन्त्रात्मक तथा गद्यात्मक दोनों रूपों में उपलब्ध होता है। जब हम कहते हैं कि, 'अनन्तावै वेदाः' तो इसका तात्पर्य यह है कि इनके प्रतिपाद्य विषय का स्वरूप अनन्त है।

ऋक् संहिता की भाषायी संरचना छन्दात्मक है। साम संहिता ज्ञेयात्मक तथा यजुः संहिता की भाषयी संरचना गद्यात्मक एवं पद्यात्मक दोनों है। चूंकि गुरु के समीप निश्चय किया हुआ ज्ञान उपनिषद् कहलाता है अतः उपनिषदों का स्वरूप बहुविध है। गुरु-शिष्य के मध्य जिस प्रकार से विचारों का आदान-प्रदान हुआ उसी प्रकार उपनिषदों का आकार बना। इसलिए उपनिषदें भंजात्मक, गद्यात्मक तथा पद्यात्मक तीनों ढंग से लिखी गयी हैं।

5.3.1 संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्

उपनिषदों का अध्ययन संहिता (मन्त्रों का समूह) ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदों के पारस्परिक सम्बन्धों को जाने बिना अपूर्ण हैं। उपनिषदें संहिता प्रधान भाग जिसे वेद कहा जाने लगा है। उनसे उपनिषदों का अत्यन्त समीप है। उपनिषदों को वेद का सिरोभाग कहा गया है जिसमें वेद के ही अन्तिम सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन किया गया है। उपनिषदें किसी न किसी वेद की शाखा से जुड़ी हुई हैं। उदाहरण स्वरूप ईशावास्योपनिषद् में एक दो शब्द नये छोड़कर बाकी सभी वाजसनेयी संहिता के ही हैं। इसी प्रकार कई उपनिषदों जैसे कौशीतकी ब्राह्मणोपनिषद् में ब्राह्मण तथा ऐतरेय और बृहदारण्यक उपनिषदों में आरण्यकों के सम्मिश्रण से ब्राह्मण और आरण्यक का उपनिषद् के साथ एकत्व का परिचय मिलता है।

5.4 नाम एवं संख्या

इस सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं वेद ही ऋक्, यजुः, साम एवं अथर्व रूप में चार हैं। यह हम अक्सर कहते हैं। अब हमें यह देखना है कि क्या इसी प्रकार की कुछ बातें उपनिषदों के लिए भी हैं?

उपनिषदें कितनी हैं? इस विषय पर मुक्तिकोपनिषद् का प्रमाण महत्त्वपूर्ण है। मुक्तिकोपनिषद् के अनुसार वेद की जितनी शाखाएं हैं उतनी ही उपनिषदें हैं। ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 109,

सामवेद की 1000 और अथर्ववेद की 50 कुल 1180 शाखाएं हैं। इसके अनुसार कुल 1180 उपनिषदें होनी चाहिए परन्तु वे उपलब्ध नहीं हैं। मुक्तिकोपनिषद् में ही 108 उपनिषदों का नाम दिया गया है।

यहाँ यह संन्देह हो सकता है कि उपनिषदों की 1180 शाखाओं का होना कल्पना मात्र है या इसका कोई आधार भी है? वस्तुतः उपनिषदों की संख्या बृहद् थी। इसे काल्पनिक नहीं कहा जा सकता क्योंकि मुक्तिकोपनिषद् में जहाँ उपनिषदों की संख्या 108 दी गयी है। वहीं उपनिषदों की नामावली देने से पूर्व ही यह कह दिया गया है कि 108 उपनिषदों में ही सभी उपनिषदों का सार समाहित है और 108 उपनिषदों के नाम दे दिये गये हैं। इसी ग्रन्थ में नारायणउपनिषद् की दो व्याख्याएं पृथक-पृथक एवं रामतापिनी, नृसिंहतापिनी और गोपालतापिनी उपनिषदों के पूर्व और उत्तर दो अलग-अलग भाग किये जाने से यह संख्या 112 हो जाती हैं। (विस्तृत विवरण के लिए गीता प्रेस से प्रकाशित 'कल्याण' का 'उपनिषद्-अंक' देखें।) उपनिषद् के तुल्य ग्रन्थ पुराणों, महाकाव्यों में भी मिलते हैं जैसे- भगवद् गीता। उपनिषद् वाक्य महाकोश में 223 उपनिषदों का उल्लेख है। अय्यर लाइब्रेरी मद्रास से लगभग 200 उपनिषदें प्रकाशित भी हो चुकी हैं।

आजकल विषयवस्तु के वर्णन की विशुद्धता और अपनी प्राचीनता के कारण कुछ उपनिषदें अधिक लोकप्रिय एवं प्रामाणिक मानी जाने लगी हैं। इसका एक कारण यह भी है कि शंकराचार्य ने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, श्वेताश्वर, ऐतरेय, तैत्तिरीय, बृहदारण्यक, छान्दोग्य का भाष्य लिखा है तथा इनके अतिरिक्त अपने भाष्य में उन्होंने छः और उपनिषदों का नामोल्लेख किया है।

चूँकि समय के साथ वेद का विस्तार सम्पूर्ण वैदिक वाङ्मय के क्रम से होते-होते वैदिक शाखा के रूप में आगे बढ़ा तथा फिर शाखा भेद में, इससे ही सम्प्रदाय भेद उत्पन्न होगया। इसलिए कालान्तर में उपनिषदों का विस्तार धार्मिक सम्प्रदायों के अन्तर्गत भी होने लगा। अय्यर लाइब्रेरी मद्रास से सम्प्रदाय के आधार पर वर्गीकृत सन्यास उपनिषद्, योग उपनिषद्, वेदान्त उपनिषद् और वैष्णव उपनिषद् शीर्षक से उपनिषदों के चार संग्रह प्रकाशित हैं।

उपनिषदों में वैष्णव, शाक्त, शैव, तथा योगविषयक उपनिषदों की प्रधानता है। कालान्तर में जब वैष्णवमत, शैवमत, शाक्तमत, सौरमत, गाणपत्यमत और ब्राह्ममत के सम्प्रदाय विकसित हुए तो इनकी अपनी-अपनी उपनिषदें भी प्रकाश में आई। उपलब्ध वैदिक शाखाओं की चौदह मुख्य उपनिषदें निम्नलिखित हैं-

वेद	शाखा	उपनिषद्
ऋग्वेद	शाकल बाष्कल	ऐतरेय उपनिषद् 1. कौषीतकि उपनिषद् 2. बाष्कल-मन्त्रोपनिषद्
सामवेद	कौथुम	छान्दोग्य-उपनिषद्
	जैमिनीय	केनोपनिषद्
कृष्णयजुर्वेद	तैत्तिरीय	तैत्तिरीय-उपनिषद्
	मैत्रायणी	मैत्रायणी-उपनिषद्
	कठ	कठोपनिषद्

	श्वेताश्वतर	श्वेताश्वतरोपनिषद्
शुक्लयजुर्वेद	काण्व	1. ईशावास्योपनिषद्
		2. बृहदारण्यकोपनिषद्
	माध्यन्दिन	1. ईशावास्योपनिषद्
		2. बृहदारण्यकोपनिषद्
अथर्ववेद	*पैप्लाद* *शौनक*	प्रश्नोपनिषद् 1. मुण्डक-उपनिषद् 2. माण्डुक्योपनिषद्

5.4.1 ईशावास्योपनिषद्

भारतीय परम्परा के उपनिषद् गणना-क्रम में इसे प्रथम स्थान पर रखा गया है। अधिकांश आचार्यों ने इस पर टीका लिखी है। इसमें कुल 18 मन्त्र हैं। इसमें न केवल वेदों का सार है बल्कि गीता का बीज भी है।

5.4.2 केन उपनिषद्

इसे तलवकार उपनिषद् भी कहते हैं क्योंकि यह तलवकार-ब्राह्मण का नवम् अध्याय है। इस उपनिषद् का मूल स्रोत अथर्ववेद का केन-सूक्त माना जात है। इसमें चार खण्ड हैं। दो पद्यात्मक तथा दो गद्यात्मक तथा कुल 34 मन्त्र हैं। इसमें यक्षोपाख्यान द्वारा ब्रह्म के स्वरूप को समझाने का प्रयास किया है। जिसमें यक्ष, अग्नि, वायु, इन्द्र, उमा आदि पात्रों की ब्रह्म के विभिन्न शक्तियों के प्रतीक के रूप में रखा गया है।

5.4.3 कठ उपनिषद्

इसमें दो अध्याय हैं और प्रत्येक में तीन-तीन वल्लियाँ हैं। सम्पूर्ण उपनिषद् में 119 मन्त्र हैं, जो प्रायः पद्यात्मक हैं। इस उपनिषद् में यम-नचिकेता संवाद है। यहाँ संवादरूप में आत्मा-परमात्मा के गूढ़ उच्च ज्ञान का विशद् और गम्भीर उपदेश दिया गया है। इसमें आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ-साथ लौकिक एवं व्यावहारिक उपदेश भी हैं। मानव कल्याण के निमित्त पाँचों यज्ञ-भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ, देवयज्ञ और ब्रह्मयज्ञ का भी संकेत हुआ है। यह उपनिषद् सामाजिक-विज्ञान के क्षेत्र में कई आधारभूत सिद्धान्तों को उद्घाटित करती है।

5.4.4 मुण्डक उपनिषद्

यह उपनिषद् मुख्यरूप से तीन भागों में विभाजित है। इन भागों को मुण्डक कहा गया है। सम्पूर्ण उपनिषद् में कुल 64 मन्त्र हैं। मन्त्ररूप में होने से इसे मन्त्रोपनिषद् भी कहा जाता है। यह उपनिषद् उन सन्यासियों को लक्ष्य करके रची गयी है, जो राग-द्वेष से मुक्त हैं और ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के प्रति निष्ठावान् हैं।

5.4.5 माण्डूक्य उपनिषद्

आकार की दृष्टि से यह छोटी उपनिषद् है। परन्तु वर्ण्य विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसकी प्रसिद्धि का प्रमाण है कि आचार्य गौड़पाद कारिका नाम से इस पर चार खण्डों में विभक्त अपनी कारिकाएँ लिखी हैं। प्रथम मन्त्र में ही ब्रह्म के नाम 'ओम्' की अपार महिमा बताते हुए

उसे ब्रह्म से अभिन्न माना गया है- "ओमित्येदक्षरमिदं सर्वभूतस्योपव्य। ख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव।"

5.4.6 प्रश्न-उपनिषद्

इसमें छः ऋषि (सुकेशा, शिविकुमार, सत्यकाम, सौर्यायणी, आश्वालयन, भार्गव, कबन्ध) ब्रह्म विद्या की खोज में महर्षि पिप्पलाद के समीप आते हैं और उनसे आध्यात्म विषयक प्रश्नों का उत्तर पूछते हैं। प्रश्नों के उत्तर के रूप में निबद्ध होने के कारण यह प्रश्न-उपनिषद् कहलाया।

5.4.7 श्वेताश्वतर उपनिषद्

यह उपनिषद् 'रुद्र-शिव' से सम्बन्धित होने से विशेषरूप में 'शैवमत' के गौरव की प्रतिपादिका है। यह छः खण्डों में विभक्त है। भारत के आगम-निगम परम्परा का समन्वय इस उपनिषद् में दिखता है। इसमें सभी प्रमुख दार्शनिक विचारधारा के अंकुर मिलते हैं।

5.4.8 तैत्तिरीय उपनिषद्

तैत्तिरीय आरण्यक के सप्तम्, अष्टम् और नवम् प्रपाठकों का नाम तैत्तिरीय उपनिषद् है। इन प्रपाठकों को क्रमशः शिक्षा वल्ली, ब्रह्मानन्द वल्ली और भृगुवल्ली कहते हैं। इनमें क्रमशः 192, 9 और 10 अुवाक हैं।

शिक्षावल्ली के प्रारम्भ में भिन्न-भिन्न शक्तियों के अधिष्ठाता परब्रह्म परमेश्वर के भिन्न-भिन्न नामों और रूपों की स्तुति की गयी है। इस उपनिषद् में भारतीय धर्म, दर्शन समाज-दर्शन, शिक्षा-दर्शन से जुड़ी अनेक शिक्षाएं मिलती हैं। उसकी चर्चा हम अगले इकाई में करेंगे।

5.4.9 ऐतरेय उपनिषद्

ऋषि महिदास इसके प्रणेता हैं। ऐतरेय आरण्यक के द्वितीय आरण्यक के चतुर्थ, पळचम् और षष्ठ अध्यायों को ऐतरेय उपनिषद् कहते हैं। आरण्यक का भाग होने के कारण गद्यात्मक है। यह एक लघुकाय उपनिषद् है। उपनिषद् के प्रथम खण्ड में आत्मा से चराचर सृष्टि का कथन है द्वतीय अध्याय में मनुष्य शरीर की अनित्यता दिखाकर मनुष्य में वैराग्य उन्पन्न करने के लिए उसकी उत्पत्ति का वर्णन है। तृतीय अध्याय में हृदय, मन, संज्ञान, विज्ञान, प्रज्ञान, मेधा आदि सबकी सब शक्तियों को प्रज्ञान स्वरूप बताया गया है। यह समस्त शक्तियाँ उसकी परम सत्ता का बोध कराने वाली लक्षण हैं।

5.4.10 छान्दोग्य उपनिषद्

इसमें आठ अध्यायों के 54 खण्ड हैं। यह उपनिषद् सम्पूर्णतया गद्यात्मक है। प्रथम 5 अध्याय में ध्यान को प्रधानता देते हुए उपासना का वर्णन है तथा अन्तिम तीन में वेदान्त दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों का विशेष रूप में प्रतिपादन है। 'सामन्' के प्रतीकात्मक और व्याख्यान द्वारा 'आत्मन्' तथा 'ब्रह्मन' का विशद् ज्ञान करती है।

5.4.11 बृहदारण्यक उपनिषद्

यह शतपथ ब्राह्मण का अन्तिम भाग है। आकार-प्रकार और प्रतिपाद्य की दृष्टि से बड़ा है। माध्यन्दिन तथा काण्व दोनों शाखाओं के अन्तिम छः अध्याय बृहदारण्यकोपनिषद् कहलाता

है। 'ब्रह्मविद्या' से सम्बन्धित होने से उपनिषद् है। अरण्य में लिखे जाने से आरण्यक है और अन्य उपनिषदों से बड़ा होने से आरण्यक है। इसमें छः अध्यायों में विभक्त दो-दो अध्यायों के तीन काण्ड हैं जिन्हें क्रमशः मधुकाण्ड, याज्ञवल्क्यकाण्ड और खिलकाण्ड कहा जाता है। प्रथम अध्याय में अश्वमेधयज्ञ के अश्व को पुरुषरूप मान कर उसकी आध्यात्मिक व्याख्या की गयी है।

5.5 उपनिषदों का रचना काल

उपनिषदों के रचनाकाल को लेकर विद्वान एकमत नहीं हैं। इस विषय पर आधुनिक और पारम्परिक दृष्टिकोण रखने वालों में पर्याप्त मतभेद है। उपनिषदों के रचनाकाल का निर्धारण अभी भी एक अनुत्तरित प्रश्न है। किन्तु, अधिकांश विद्वान इस मत पर सहमत हैं कि मुख्य उपनिषदों में अधिकतर की रचना बुद्ध के अवतरण से पूर्व में हो चुकी थी।

5.6 उपनिषदों के प्रवचनकर्त्ता

प्रायः सभी ऋषियों की यह घोषणा है कि जिस ज्ञान को वे प्रदान कर रहे हैं उसका उन्होंने आविष्कार नहीं किया है। वह तो उनके आगे बिना प्रयत्न के प्रगट हुआ है (पुरुष प्रयत्न बिना प्रकटीभूत शंकर) यह तो सच ही है कि क्योंकि वेद अपौरुषेय हैं। उपनिषदों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कुछ ऐसे भी उपनिषद् हैं जिनके साथ प्रणेता के रूप में कुछ ऋषियों के नाम जुड़े हुए हैं, जैसे ब्रहदारण्यकोपनिषद् के लिए याज्ञवल्क्य, मुण्डकोपनिषद् के अंगिरा, श्वेताश्वतरोपनिषद् के श्वेताश्वतर ने वस्तुतः अपने-अपने उपनिषदों में अतिप्राचीन ब्रह्मविद्या के प्रथम प्रवचनकर्त्ता माने गये हैं। (विस्तृत जानकारी के लिये उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान से प्रकाशित वेद खण्ड का अध्ययन करें।)

5.6.1 उपनिषदों की भाषा-शैली

प्रमुख उपनिषदों की भाषा संस्कृत है। उनकी प्रतिपद्य संरचना गद्य, पद्य अथवा दोनों में हैं। वाक्य विन्यास सरल और सीधा है। पद्य सरस और मनोहारी हैं। कठ्, मुण्डक, श्वेताश्वतर आदि कुछ उपनिषदों में काव्यात्मकता उच्च कोटि है। इनमें अनेक उपमाओं, रूपकों और दृष्टान्त को सहजरूप में प्रतिपाद्य के साथ पिरोया गया है।

5.6.2 उपनिषदों के प्राचीन भाष्य

हम जान चुके हैं कि उपनिषदें ऐसे ऋषियों के उपदेश हैं, जो दार्शनिक समस्याओं के विभिन्न पक्षों में रुचि रखते थे। जब इन उपनिषदों की व्याख्या इनके पश्चात् के विचारकों द्वारा किसी विशेष दार्शनिक पद्धति एवं मन्तव्य के साथ किये जाने लगे। पद्धति विशेष के अन्तर्गत आने से उपनिषदों की कई प्रकार की व्याख्याएँ प्राप्त होती हैं। इन पद्धतिमूलक व्यख्याओं को भाष्य कहते हैं। उपनिषदों की प्राचीन व्याख्याओं को निम्न वर्गों में बांट सकते हैं-

i. शंकर के पूर्ववर्ती भाष्य: भर्तृप्रपळच, ब्रह्मानन्द, दक्षिणचार्य आदि आचार्यों के भाष्य। ये भाष्य उपलब्ध नहीं हैं।

ii. शंकर एवं उनकी परम्परा के भाष्य: आचार्य शंकर ने अद्वैतवादी दृष्टि से (अर्थात् जीव-ब्रह्म में अभेद है) 11 प्रमुख उपनिषदों पर भाष्य लिखे हैं। इनकी परम्परा में सुरेश्वराचार्य,

आनन्दगिरि विद्यारण्य मुनि, शंकरानन्द, ब्रह्मानन्द, आनन्दभट्ट, भास्करानन्द, उपनिषद ब्रह्म योगी आदि ने उपनिषदों पर भाष्य अथवा टीकाएँ लिखी हैं।

iii. वैष्णव भाष्य: ग्यारवीं शताब्दी में रामानुचार्य (1020-1137 ई.) ने, वेंकटनाथ वेदान्तदेशिक (1300 ई.) ने, विशिष्टाद्वैतवादी भाष्य तथा आचार्य आनन्दतीर्थ 'मध्व' (1199-1278 ई.) ने उपनिषदों पर द्वैतवादी भाष्य लिखे तथा 15वीं-16वीं शताब्दी में शुद्धद्वैत के प्रतिष्ठाता आचार्य वल्लभाचार्य अनुयायी पुरुषोत्तम ने शुद्धद्वैवादी भाष्य तथा निम्बार्क के अनुयायिओं ने भी उपनिषदों पर अपने मत के अनुसार भाष्य या टीकाएँ लिखीं।

5.7 विवेचन विधि

चूंकि उपनिषदें मानवीय ज्ञान के चरम विषयों से सम्बन्धित हैं अतः गुरुओं ने इस ज्ञान के शिष्य के मध्य प्रवेश कराने हेतु अनेक विधियों का प्रयोग किया है। उपनिषद दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण नामक पुस्तक में प्रो. रनाडे ने जिन प्रमुख विधियों का उल्लेख किया है उसका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है-

5.7.1 प्रतीकात्मक विधि

उपनिषदों का पतिपाद्य व्यापक ज्ञान का बोध कराना है चूंकि उस ज्ञान की उपस्थिति सभी रूपों में हो सकती है क्योंकि वह सर्वव्यापी है अतः ऋषियों ने प्रतिपाद्य को सुगम और बोधगम्य बनाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया है। मुनि शाण्डिल्य ने छान्दोग्योपनिषद् में ब्रह्म को 'तळजलान' कहा।

5.7.2 निरुक्त विधि

वैदिक शब्दों एवं मन्त्रों के निर्वचन को 'निरुक्त' कहते हैं अर्थात् शब्द स्वयं जो अपने अर्थ को निर्धारित करते हैं। यह व्यवस्था निरुक्त से आती है। यह विधि शब्दार्थ विश्लेषण की विधि है। उदाहरणार्थ पुरुष = पुरि अर्थात् जो देह में शयन करता है, वह पुरुष है।

5.7.3 सूत्र विधि

कहीं-कहीं उपनिषदों में सूत्र रूप में प्रतिपादन किया गया है माण्डूक्योपनिषद् में ऊँ को ब्रह्म सिद्ध किया गया है। ऊँ में निहित अ+उ+म् आत्मा का स्वरूप है। यह ऊँ एक साथ ब्रह्म का ध्वन्यात्मक एवं अक्षरात्मक स्वरूप है।

5.7.4 उपमान विधि

विवेचना की उपमान विधि में किसी प्रसिद्ध वस्तु के आधार पर अप्रसिद्ध वस्तु का ज्ञान इन दोनों वस्तुओं के मध्य तुल्यता दिखाकर ज्ञात किया जाता है। आरुणि ऋषि और उनके पुत्र श्वेतकेतु के मध्य उपमान द्वारा आत्मा को स्पष्ट किया गया है। ब्रह्म और आत्मा के मध्य ऐक्य को 'तत्त्वमसि' कहकर किया गया है। आरुणि कहते हैं जिस प्रकार तुम्हारी सत्ता तुम्हारे अपने होने के भाव से सिद्ध होता है उसी प्रकार ब्रह्म भी स्वयंसिद्ध है।

5.7.5 संवाद विधि

उपनिषदिक ज्ञान श्रुतिमूलक है। श्रुतिमूलक उसे कहते हैं जिसे गुरु मुख से सुनकर समझा जा सकता है। गुरु-शिष्य तथा विभिन्न जिज्ञासुओं के मध्य परस्पर संवाद द्वारा विषय का प्रतिपादन किया गया है।

5.7.6 समन्वय विधि

परस्पर विरोधी विचार उत्पन्न होने पर समन्वय विधि को अपनाय गया है। छान्दोगयोपनिषद में अश्वपति कैकेया द्वारा सृष्टि-विज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों का समन्वय किया गया है। इसी तरह प्रश्नोपनिषद् में पिप्लाद ने छः ऋषियों के सिद्धान्तों का समन्वय किया है।

5.7.7 विश्लेषण विधि

जटिल दार्शनिक समस्या को समस्या के अंग-प्रत्यंग में विभाजित कर विचार किया गया है। एह कारण के विश्लेषण के अकारण आत्मा की प्राप्ति आधार का विश्लेषण करते-करते निराधरर तत्त्व की स्थापना। इसी विधि से यह बतलाया गया है कि प्रत्येक कार्य का कारण लोकज्ञान सिद्ध है, जो सबका कारण है वह सर्वाधार है; स्वयं कारण निराधार है इसे ही आत्म तत्त्व कहा गया है।

5.7.8 अधिदैवत विधि

वह शक्ति जो सृष्टि में संचालित हो रहे कार्यों में परम सहायक है उन्हें देवतत्त्व से अभिहित किया गया है। उपनिषदों में देव तत्त्व के कथानकों के माध्यम से सृष्टि प्रक्रिया एवं उसके ज्ञान का प्रतिपादन किया गया है।

स्वरूप विवेचन के बाद हम उपनिषदों के प्रमुख प्रतिपाद्यों की चर्चा संक्षेप में करेंगे-

5.8 उपनिषदों का प्रतिपाद्य

वास्तव में उपनिषदों का क्या विषय है? इसका संकेत तो हम पहले ही कर चुके हैं। जब उपनिषद् शब्द को परिभाषित करते हुए यह कहा गया कि जो शास्त्र ज्ञान-अवज्ञान का अवसादन करके सत्य को प्राप्त करा दे उसे उपनिषद् कहते हैं। उपनिषदों के प्रतिपाद्य का संकेत कर दिया गया। अलबत्ता इस साधारण कथन के बाद भी यह जाने की अपेक्षा रह जाती है कि वह कौन सा ज्ञान है जिसका समाहार उचित है? वह कौन सा सत्य है जिसको अज्ञान के नाश के द्वारा प्राप्त करना आवश्यक है तथा इस प्रकार के सत्य क प्राप्ति का प्रयोजन ही क्यों है? इन प्रश्नों का समाहार होना चाहिए।

यह एक सार्वभौम सत्य है कि विश्व के सभी लोगों को कभी न कभी दुःखी होना ही पड़ता है। सुख-दुःख के द्वन्द्व से को मुक्त नहीं है यदि कहीं सुख है भी तो अनित्य है। दुःख की निवृत्ति का उपाय अज्ञान का नाश करके सत्य तत्त्व का ज्ञान कराना है। उपनिषदें हमें यह बताती हैं कि सच्चा ज्ञान यह अनुभव करना है कि इस चराचर जगत का जो आश्रय है वही हमारी आत्मा है।

प्रमुख उपनिषदों के अध्ययन से निष्कर्ष यह निकलता है कि हम जो जीवन जीते हैं, इनमें हम यानी हमारा शरीर उसके ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और इनसे कार्य करने वाला मन, बुद्धि और

अहंकार और इन सभी का प्रेरक तत्त्व है, उसे कहते हैं। यही आत्मा सब मनुष्यों में; सब प्राणियों में और समस्त विश्व में फैला हुआ है। इसलिए इसे परमात्मा कहते हैं और और जिस विशाल सृष्टि में यह परमात्म-तत्त्व अपनी लीला अनुभव कराता है उसी को विश्व कहते हैं।

लगभग सभी उपनिषदों में आत्मा (जीवात्मा) परमात्मा (विश्वात्मा) और यह सारा विश्व इनका आपस में सम्बन्ध जैसा है। जीवन का अन्तिम कारण एवं प्रयोजन क्या है, इसे सिद्ध करने के उपाय क्या हो सकते हैं, इन उपायों को लागू करने के लिए किस प्रकार की साधन करनी होगी, यह सब विविध रूप में उपनिषदों ने दिया है।

उपनिषदों की पंक्तियाँ दार्शनिक गहराई, आत्मिक सघनता, वैचारिक स्फूर्ति, मानवीय सहानुभूति से ओतप्रोत है। आचार्य शंकर ने तैत्तिरीय उपनिषद् के भाष्य में 'उपनिषद' शब्द का अर्थ 'ब्रह्मज्ञान' बतलाया है। यह ब्रह्मज्ञान मनुष्य को उस अज्ञान से समाप्त होता है जो अनादिकाल से जीव को भ्रमित किये हुए है। यह अज्ञान जिस विद्या से समाप्त होता है उसे आत्म-विद्या कहते हैं। इसे गूढ़ विद्या या रहस्य विद्या भी कहा जाता है। विदेशी विद्वान पाल डायसन ने भी इसे स्वीकार किया है।

भारतीय आचार्यों ने उपनिषदों के प्रतिपाद्य को विभिन्न सिद्धान्तों के आधार पर सिद्ध किया है। शंकर अद्वैत सिद्धान्त, रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत, माध्व ने द्वैत सिद्धान्त की स्थापना की है। शंकराचार्य ने अपने सिद्धान्त को स्थापित करने के लिए प्रमुख उपनिषदों पर भाष्य लिखा। रामानुज ने तो स्वयं भाष्य नहीं लिखा किन्तु उनके शिष्यों ने विशिष्टाद्वैत के प्रतिपादन में ग्रन्थ लिखे हैं। श्री मध्वाचार्य ने द्वैत सिद्धान्त के प्रतिपादक भाष्यों की रचना की है।

उपनिषद् के प्रमुख प्रतिपाद्य को निम्न शिर्षकों के अन्तर्गत समझा जा सकता है।

5.8.1 श्रेय और प्रेय

जिस 'श्रेय-प्रेय' शब्द की जोड़ी भारतीय चिन्तन में बार-बार प्रयुक्त होती है। किन्तु इसका विवेचन उपनिशदों में सर्वप्रथम हुआ। सोचिये कि कठोपनिषद् के ऋषि ने जब श्रेय एवं प्रेय का भेद बताया होगा तो सुनने वाले जिज्ञासुओं को कितना रोमांच हुआ होगा?

हर मनुष्य सुख ही चाहता है और दुःख को टालना चाहता है। सुख-दुःख दोनों भावनाएं जीवन में प्रधान प्रेरक तत्त्व हैं। यह व्यवावहारिक जीवन का सत्य है किन्तु तत्त्व ज्ञान की स्थिति में सुख एवं दुःख दोनों की उपयोगिता नहीं मानी जाती। सुख-दुःख के आधार पर सम्पूर्ण जीवन के उद्देश्य को नहीं निर्णित किया जा सकता। आज सुख-दुःख इन दो शब्दों का अर्थ चाहे जितना भी व्यापक रूप में मान लिया जाय किन्तु उपनिषदों मे ंतो सुख-दुःख का असली अर्थ इन्द्रियों के साथ सम्बन्ध रखना है। इन्द्रियों के लिए जो अनुकूल है वह है सुख। इन्द्रियों को जो वस्तु प्रतिकूल है उसे दुःख कहते हैं। काका कलेलकर ने 'उपनिषदों के बोध' में कहा है, "जीवन के समग्र परिणति को समझाने वाले ऋषि कहते हैं, सुख इन्द्रियों के लिए अनुकूल है इसलिए उसके पीछे जाना बहुत बार खतरनाक होता है। इन्द्रियों के लिए जो वस्तु अनुकूल है; वही जीवन के लिए बाधक होती है तब उसे छोड़ने के लिए अन्तरात्मा को जो आती है उसे श्रेय कहते हैं।"

अर्थात् इन्द्रियों की मांग के पीछे आंख मूंदकर जाने की भावना को रोकने वाला 'श्रेय' है तथा इन्द्रियां जिसे सुख-दुःख मानती है उसे 'प्रेय' कहा जाता है। ऋषि कहते हैं, "श्रेयस अगल है

प्रेयस अलग है। दोनों का फल अलग है। श्रेयस से कल्याण होता है जो प्रेय को पसन्द करता है उसकी हानि होती है। जब श्रेय और प्रेय दोनों आकर खड़े होते हैं तब बुद्धिमान एवं धीर पुरुष दोनों को पहचान लेता है।

सामान्य जीवन में भी यह देखने को मिलता है कि धीर व्यक्ति प्रेय को एक ओर रखकर श्रेय को ही पसन्द करता है। जो मूढ़ है बुद्धिमन्द है; वह तो अपनी सहूलियत देखकर प्रेय को पसंद करता है।

बुद्धिमान (श्रेयमार्गी) यह जानता है कि यह जीवन शरीर के साथ ही समाप्त नहीं होता हम तो शरीर के सुखों पर बिना ध्यान दिये भी समाज पर असर डाल सकते हैं। जन्म-मृत्यु के बीच छोटा सा जीवन पूर्ण जीवन नहीं है। मृत्यु के बाद भी जीवन है। उस जीवन को साम्पराय कहा जाता है। उस पर भी विचार करना चाहिए तभी 'श्रेय' की शुभकारिता समझ में आएगी। इहलोक तथा परलोक मिलकर जो जीवन बनता है वही सच्चा और पूर्ण जीवन है। मनुष्य में एक अजर अमर तत्त्व है जिसका विनाश कभी नहीं होता उसे 'आत्मा', 'भूमा', 'शाश्वत', 'अमर्त्य', 'सनातन' आदि शब्दों से कहा जाता है।

5.8.2 'भूमा' का साक्षात्कार

श्रेय मार्ग से जिस स्थिति को जीव प्राप्त होता है उसे उपनिषदों में भूमा का साक्षात्कार कहा गया है। छान्दोग्योपनिषद में प्रसंग आया है-

यो वै भूमा तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति।
यो वै भूमा तत् अमृते, अथ यत् अल्पं तद् मर्त्यम्।।

काका कालेलकर कहते हैं- सर्व, विराट, विशाल, भूमा, ब्रह्म, अमृत, अनन्त, विभू, सनातन ये सब संस्कृत भाषा के प्रिय शब्द हैं। इनके अर्थ का ध्यान करते भारतीय मानस मस्त हो जाता है। आदमी कैसा भी क्यों न हो, इन शब्दों का नाम लेकर जब उसको आह्वान किया जाता है, पाचारण किया जाता है, इनकी प्रेरणा जब उनको मिलती है, तब वह उनको इनकार नहीं कर सकता।

जो भूमा है, सर्वव्यापी है, सर्वग्राही है वही सुख है, उसमें अमरता है। जो अल्प है, वह तुच्छ है, उसमें सुख नहीं। यह क्षणजीवी मृत्यु से घिरा हुआ है। जो भूमा है वह अपनी प्रतिष्ठा में स्थित है, स्थिर है।

हमारी व्यक्तिगत हो या सामाजिक हो, हर तरह की साधना में हम इसी कसौटी को लेकर चलें कि क्या हम अल्प की ओर जा रहे हैं या भूमा की ओर, और अगर भूमा की ओर ही जा रहे हैं तो क्या हमने अपनी साधना का मार्ग दृढ़ बनाया है या उसे पोला रहने दिया है? हमारा आकाश भी पोला नहीं है। वह है भूमा, वह है ब्रह्म। 'ब्रह्म' याने सबसे बड़ा बृहत्तम- जो सबसे बड़ा है, सनातन, विभु है, सर्वसमर्थ है और नित्य तृप्त है। उसी की उपासना करनी है, उसी से शांति मिलेगी और उसी के द्वारा हम शांति प्रदान भी कर सकेंगे। सचमुच जो अल्प है, उसमें सुख नहीं। वह मर्त्य है। जो भूमा है, वही सुख है, वही अमृत है।

5.8.3 सृष्टि विज्ञान

परमात्मा से चराचर जगत की उत्पत्ति-क्रम के बारे में-

तस्मादग्निः समिधोयस्य सूर्यः सोमात्पर्जन्य ओषधयः पृथिव्याम।

पुमान्रेतः सिचति योषितायां वह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रूताः।।5।।

अर्थात् परब्रह्म से सर्वप्रथम तो उनकी अचिन्तय शक्ति का एक अंश अद्भुत अग्नि तत्त्व उत्पन्न हुआ, जिसका इंधन सूर्य है। अग्नि से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ। चन्द्रमा से सूर्य की रश्मियों में कुछ शीतलता आ गयी और मेघ उत्पन्न हुआ। मेघों से पृथ्वी में नाना प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न हुईं। उन औषधियों (वनस्पतियों आदि) के भक्षण से उत्पन्न हुए वीर्य को जब पुरुष स्त्री में सिंचन करता है तब उससे संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार परम पुरुष परमेश्वर से ये नाना प्रकार के चराचर जीव उत्पन्न हए।

5.8.4 आत्मा

उपनिषदों मे बार-बार आत्मा शब्द हमें प्राप्त होता है। 'आत्मा वा अरे श्रोतव्यो, मनतव्यो, मिदिध्यासितव्यो' आत्मा ही श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करने योग्य है। उस आत्मा के दर्शन से, श्रवण, मनन, निदिध्यासन से और उसके विज्ञान से सारे विश्व के रहस्य को पाया जा सकता है। यह आत्मा हमारे जीवन का सार है। पंचभूतात्मक सृष्टि इसी का स्थूलतम् विस्तार है।

मनुष्य ने जब अपनी खोज की तब इन्द्रियों के साथ, 'करण' के साथ, सहयोग करनेवाला एक अंदरूनी करण भी उसने पाया। उसने उसे अंतःकरण कहा। इस अंतःकरण को समझने की कोशिश करते चित्त, चित्तवृत्ति, मन, बुद्धि, अहंकार आदि उत्तरोत्तर और सूक्ष्म तत्त्वों को उसने पहचान लिया और बाद में इन सबके परे जो है अथवा अन्दर जो है, उसे उसने 'अंतरतर' कहा। वही आत्मा है।

5.8.5 ब्रह्म

जिस तरह अंदरूनी उपासना में अहंकर के बाद आत्मा की प्राप्ति हुई, उसी तरह बाह्य उपासना में आकाश के बाद अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति हुई। जो बड़ा है, बृहत् है, बृहत्तर, बृहत्तम है, वही है ब्रह्म। ब्रह्म से बढ़कर कुछ है ही नहीं।

वरुण के पुत्र भृगु ने उनसे एक बार पूछा था- भगवन् 'ब्रह्म' क्या है? कृपया इस सन्दर्भ में मुझे ज्ञान दें। वरुण ने उनसे कहा था- जिनसे सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, पालित होते हैं और अन्त में जिनमें विलीन हो जाते हैं, वही 'ब्रह्म' है- यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत् प्रत्यन्त्यभिसंविशन्ति, तद् ब्रह्म इति (तैत्तिरीयोपनिषद्-3/1)। उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म ही परम सत्य है। आत्मा का वह अद्वैतरूप है। सत्य, ज्ञान और अनन्तरूप है। मध्वाचार्य के अनुसार- गुणों की पूर्णता जिसमें हो, वही ब्रह्म है- वृहन्तो यस्मिन् गुणाः। उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म सत्, चित् और आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द है। वही सबकी आत्मा है और उसी में इस नामरूपात्मक जगत् की सृष्टि होती है। ब्रह्म सबमें व्याप्त होने के कारण सर्वभूमा कहलाता है। ब्रह्म ही विश्व का अव्याकृत रूप है। वही सभी वस्तुओं का परम कारण है। संसार की सभी वस्तुओं का और शक्तियों का आधार है। इसी ब्रह्म ने सृष्टि की उत्पत्ति के समय समस्त सृष्ट पदार्थों में प्रवेश किया है। फिर उसने सत्-असत्, निरुक्त-अनिरुक्त, ज्ञान-विज्ञान, ऋत-अनृत दोनों रूप धारण किया है (तैत्तिरीय उपनिषद्- 11/7)। सम्पूर्ण प्रकृति ब्रह्म की सृष्टि है, ब्रह्मजन्य है, ब्रह्मप्रेरित है। ब्रह्म ही इस सृष्टि का सूत्रधार है।

ब्रह्म के दो स्वरूप:-

उपनिषदों में 'ब्रह्म' के दो स्वरूपों का वर्णन मिलता है- (1) सविशेष अर्थात् सगुण रूप एवं (2) निर्विशेष अर्थात् निर्गुण रूप। निर्गुण ब्रह्म को 'परब्रह्म' कहा गया है। यह 'परब्रह्म' सच्चिदानन्दरूप और निरुपाधि होने के कारण अनिर्वचनीय है। उसे ही तैत्तिरीयोपनिषद् में सत्य, ज्ञानरूप और अनन्त कहा गया है- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यह ब्रह्म रसरूप है। इसे ही प्राप्त कर आत्मा आनन्दमय हो जाती है- रसो वै सः, रस ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति (तैत्तिरीयोपनिषद्- 2/7)। सविशेषभाव ठीक इसके विपरीत होता है। इसमें गुण, चिह्न, लक्षण तथा विशेषणों की सत्ता विद्यमान रहती है, जिसके द्वारा उसका उक्त स्वरूप हृदयाबगम किया जा सकता है। इन दोनों भावों को प्रदर्शित करने के लिए उपनिषदों ने दो प्रकार की बातों को प्रयुक्त किया है- एक निर्विशेष लिब और दूसरा सविशेष लिब। सविशेषलिब श्रुतियाँ सर्वकर्मा, सर्वकामः, सर्वगन्धः, सर्वरसः इत्यादि है एवं निर्विशेषलिब श्रुतियाँ अस्थूलम्, अनणु, अझस्वम्, अदीर्घम् है। यथा-

सन्ति उभयलिबाः श्रुतयो ब्रह्मविषयाः। सर्वकर्मेत्याद्याः सविशेषलिबाः, अस्थूलमनणु इत्येवमाद्याश्च निर्विशेषलिबाः। (शांकरभाष्य)

इन वाक्यों में एक विशेषता द्रष्टव्य है। सगुण ब्रह्म के लिए जहाँ पुल्लिब शब्दों का प्रयोग किया गया है, वही निर्गुण ब्रह्म के लिए नपुंसक लिंग का प्रयोग किया गया है। यही कारण है कि परब्रह्म के लिए सर्वनाम 'सः' की जगह 'तत्' शब्द का सर्वत्र प्रयोग किया गया है। ध्यान रखना चाहिए कि इस अन्तर के बाद भी प्रतिपाद्य पदार्थ में किसी प्रकार का भेद प्रतीत नहीं होता है; क्योंकि सोपाधि-निरूपाधि, सगुण तथा निर्गुण आदि शब्द एक ही तत्त्व का बोध कराने वाले संकेत मात्र हैं।

1. सगुण ब्रह्म

ब्रह्म की इस अवस्था को 'अपर-ब्रह्म' कहा जाता है इसे प्रमाणों द्वारा कहा जा सकता है। वर्णन किया जा सकता है। इसके दो लक्षण हैं- (1) तटस्थ लक्षण, (2) स्वरूप लक्षण।

जिसके द्वारा वस्तु के शुद्ध स्वरूप का परिचय प्राप्त किया जाता है; वस्तु के तात्त्विक रूप की उपलब्धि होती है; यथा- ब्रह्म सत्य, ज्ञान और अनन्तस्वरूप है- सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। उसे ही स्वरूपलक्षण कहा गया है तथा तटस्थ लक्षण के द्वारा वस्तु के अस्थायी, परिवर्तनशील गुणों का वर्णन किया जाता है; जैसे- ब्रह्म से ही सभी जीवों की उत्पत्ति होती है तथा वे उसी में लीन हो जाते हैं। 'यतो वा इमानि भूतानि' इत्यादि 'अपर-ब्रह्म' का तटस्थ लक्षण है।

छान्दोग्योपनिषद् में सगुण ब्रह्म का विवेचन 'तज्जलान्' शब्द के द्वारा किया गया है। इस शब्द का विवेचन इस प्रकार किया गया है- 'तज्ज' तत्$ज अर्थात् ब्रह्म में लीन हो जायेगी। कहने का तात्पर्य यह है कि सगुण ब्रह्म ही इस संसार का उत्पादक, धारक एवं संहारक है। इस कथन की संपु ुष्टि तैत्तिरीयोपनिषद्- 3/1 ने भी की है। इनके अनुसार- जिसमें सभी प्राणी उत्पन्न होते हैं, जीवित रहते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं, वही सगुण ब्रह्म है। इस तरह सगुण ब्रह्म ही इस संसार का कारण है। वही सबका स्वामी है, वही सर्वज्ञ और सर्वव्यापक है। वही इस नाम-रूपात्मक जगत् का अधिष्ठाता है। वही संसार का नित्य और उपादान कारण है। वही सगुण ब्रह्म इस जगत् को नियन्ता है।

2. निर्गुण ब्रह्म

निर्गुण ब्रह्म 'परब्रह्म' है। सच्चिदानन्द स्वरूप एवं अनिर्वचनीय है। निर्गुण ब्रह्म को न तो किसी विशेषण से विशेषित किया जा सकता है और न तो किसी चिह्न से चिह्नित। जो अनन्त है, अनिवर्चनीय है अर्थात् जिसका निर्वचन हम कर ही नहीं सकते क्योंकि वह हमारे इन्द्रियों का विषय नहीं है। इन्द्रियों का विषय होते ही ब्रह्म सीमित हो जाएगा। सीमित ब्रह्म इस जगत का परम अधिष्ठान् नहीं हो सकता। अतः ब्रह्म को निर्गुण कहा गया। अर्थात् जिसका निर्वचन हम गुणों के द्वारा नहीं कर सकते। निर्गुण ब्रह्म गुणों से परे की अवस्था है इसलिए लौकिक विशेषणों का प्रयोग इसके लिए नहीं हो सकता। यही कारण है कि निर्गुण ब्रह्म की विवेचना 'नेति-नेति' रूप में हुआ है।

ध्यान देने योग्य यहाँ यह है कि ब्रह्म के निषेधार्थक वर्णन का अर्थ यह नहीं कि ब्रह्म कुछ नहीं है, बल्कि ब्रह्म ही सब कुछ है। अतः यहाँ ब्रह्म के सम्बन्ध में निषेध विधेयपरक है। अभाव का अर्थ भाव है। अभावात्मक विशेषणों का तात्पर्य यहाँ भावात्मक है। इस दृष्टि से ब्रह्म अलक्षण, अचिन्त्य और अनिर्वाच्य या अव्यपदेश है।

सगुण और निर्गुण ब्रह्म की एकरूपता:-

सगुण और निर्गुण के उपर्युक्त विवेचन से हमें इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि ब्रह्म संख्यात्मक रूप से दो हैं। ब्रह्म एक ही है किन्तु हमारे सीमित विचारशक्ति के कारण इसके दो रूप उपलब्ध होते प्रतीत होते हैं।

बृहदारण्यकोपनिषद् 2/3/1 के अनुसार परब्रह्म अमूर्त और अमर्त्य है। ठीक इसके विपरीत अपर ब्रह्म मूर्त और मर्त्य है। परब्रह्म यत् अर्थात् चर है और अपर ब्रह्म स्थित हे। परब्रह्म तत् है और अपर ब्रह्म सत् है। सत् और त्यत् मिलकर सत्य बनता है। निर्गुण, निराकार और निरूपाख्य तत् अर्थात् परब्रह्म और सगुण, साकार और बोधगम्य सत् अर्थात् अपर ब्रह्म दोनों एक-दूसरे से अभिन्न हैं।

यथार्थतः दोनों में कोई तात्विक भेद है ही नहीं दोनों एक ही ब्रह्म के दो दृष्टिकोण हैं। यही कारण है कि अनेक स्थलों की समान पृष्ठभूमि में ब्रह्म के उभयविध वर्णन उपलब्ध होते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् (6/11) में एक ओर उसे सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, कर्माध्यक्ष तथा साक्षी कहा गया है तो दूसरी ओर उसे निर्गुण कहा गया है। यथा-

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणस्य।।

ब्रह्म के ऐसे दोनों रूपों के वर्णन के पश्चात् उसकी अपनी विशिष्टता और विलक्षणता स्पष्ट हो जाती है। अतः उस असीम को ससीम पार्थिव इन्द्रियों से कैसे आँका जा सकता है। अतः उसे अनिर्वचनीय कहा गया है। संक्षेप में हम इतना कह सकते हैं कि परब्रह्म निर्गुण और निराकार है एवं अपर ब्रह्म सगुण और साकार है। परब्रह्म परा विद्या का और अपर ब्रह्म अपरा विद्या का विषय होते हुए भी एक ती तत्त्व के दो अलग-अलग रूप हैं।

आत्मा और ब्रह्म:-

ये दोनों शब्द एक ही सत्ता के दो पक्ष हैं। मुण्डकोपनिषद में इस सन्दर्भ मे कहा गया है कि ब्रह्म और आत्मा दोनों ही मित्रभाव से शरीररूपी वृक्ष पर निवास करते हैं। उनमें से एक 'जीवात्मा'

कर्मफलों का भोग करता है और दूसरा 'परमात्मा' उसे साक्षीभाव से देखता है। यथा मुण्डकोपनिषद्-3/1/1 द्रष्टव्य है-

द्वा-सुपर्णा सजुया सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरनयः पिप्पलं स्वादवत्त्वनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी यही तथ्य इस रूप में कहा गया है- अयमात्मा ब्रह्म सर्वानुभूः (2/2/11)। यह आत्मा ही ब्रह्म है, जो सबका अनुभव करती है। यह अखिल ब्रह्माण्ड एकमात्र ब्रह्म का विस्तार है। 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा प्राणी को समझना चाहिए। यथा- ब्र या इदमग्र आसीत्। तदात्मानमेवाऽवोचत् अहं ब्रह्मास्मि इति (बृह. उ. - 14/10)। छान्दोग्योपनिषद् में श्वेतकेतु की एक कथा है। उस कथा में जीव और ब्रह्म की एकरूपता पर विशेष टिप्पणियाँ की गई हैं। उसमें कहा गया है- यह जो अणिमा है, तद्रूप ही यह सब कुछ है। वही, वही सत्य है, वही आत्मा है। हे श्वेतकेतो! वही तुम हो। ऊपर-नीचे, दाँये-बाँये, आगे-पीछे चारों ओर वही तो है। वह आत्मा ही तो सबकुछ है। यह अखिल ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म है। उसी ब्रह्म से इसकी उत्पत्ति होती है और उसी में यह लीन हो जाता है। जिस प्रकार आकाश में सारा संसार समाहित है उसी प्रकार ब्रह्म में सभी जड़-चेतन समाहित हैं। समस्त नाम-रूप जिसके अन्दर है, वह ब्रह्म है। वह अमर्त्य है, वही आत्मा है (छान्दोग्योपनिषद्-6/87, 7/55/2, 3/14/1, 8/14/1)। यह विराट विश्व ब्रह्म का विस्तार है। आत्मा भी ब्रह्म है- सर्वमेतद् ब्रह्म, अयमात्मा ब्रह्म (मुण्डकोपनिषद्-2)। आत्मा और परमात्मा दोनों एक ही हैं। यह परमात्मा (ब्रह्म) क्या है? जिसका ज्ञान हो जाने पर शेष सब कुछ स्वतः ज्ञात हो जाता है- कस्मिन् खलु भगवतो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति (मुण्डकोपनिषद्-1/1/3)। ब्रह्म को जानते ही जानने वाला स्वयं ब्रह्म हो जाता है।

5.9 सारांश

इन विवेचनों से यह तथ्य निष्पन्न होता है कि, वेदों की संहिताओं और उनके मन्त्रों में जो अन्तिम तत्त्व अत्यन्त गूढ़ता के कारण बहुतों की बुद्धि से परे है उसका विषदीकरण उपनिषदों में उपलब्ध है। सभी उपनिषदों का सारभूत उपदेश एक ही है कि, 'उपनिषद् वह विधा है, जो मृत धर्मा मनुष्य के इस अज्ञान को काट कर कि वह मरणशील है, उसे यह प्रत्यक्ष ज्ञान करती है कि वस्तुतः मनुष्य का वाह्य शरीर मरणशील है। मनुष्य के अन्दर ब्रह्मण्ड की वही चैतन्य शक्ति निवास करती है जो कि एकमेवाद्वितीय सद् ब्रह्म है। मानव का यह स्वरूप उसमें अमृतत्त्व का भाव उपस्थापित करती है।

जो कुछ विश्व में है या जो कुछ इस सृष्टि के बाहर अज्ञात है वह एक ऐसा अपार्थिव तत्त्व है जो हमारी इन्द्रियों की पकड़ से बाहर है। ऐसा कोई काल नहीं जब वह न रहा हो और आगे भी ऐसा कोई काल नहीं होगा जब वह नहीं रहेगा। इसी तत्त्व को उपनिषद् ब्रह्म नाम से जानते हैं। उपनिषदों का मुख्य प्रतिपाद्य मनुष्य इस तत्त्व को समझ ले कि वह स्वयं ब्रह्म है जिसके ज्ञान के बिना उसे मोक्ष सम्भव नहीं।

5.10 पारिभाषिक शब्दावली

इन्द्रिय = विषय ग्रहणरूप कार्य के कारणों के रूप में इन्द्रिय को अनुमित किया जाता है। यह एक प्रकार से ज्ञान प्राप्त करने के यन्त्र हैं। इनकी संख्या दस है।

ब्रह्म = "वृहत्वात् वृहण्त्वात च" अर्थात् वह तत्त्व जो अति वृहद है तथा जो वृद्धि को प्राप्त होता है। सबसे बड़ा होने के कारण वह जगत् का कारण कहलाता है।

आत्मा = व्याप्तिबोधक, भक्षणार्थक अथवा सतत्गमन बोधक् 'अत्' शब्द से आत्मा की निष्पत्ति हुई है। अशरीरता ही आत्मा का स्वरूप है। जो शरीरी होकर शरीर में ज्ञाता, द्रष्टा मन्त्रा और विज्ञाता है।

जगत् = नाना प्रकार के प्राणियों के उपभोग योग्य स्थान और साधनों से सम्बन्ध रखने वाले इन सभी दृश्यमान वस्तुओं को जगत् कहते हैं।

भूमा = नित्य, अमर, सनातनतत्त्व को 'भूमा' कहते हैं।

नामरूप = किसी वस्तु की संज्ञा को नाम तथा उसके आकार प्रकार को रूप कहते हैं। इस विश्व में प्रत्येक वस्तु का या तो नाम है या तो आकार है अथवा दोनों है।

अनिर्वचनीय = जिसको पूरी तरह से कहा न जा सके।

मध्वाचार्य = मध्यकाल में वेदान्त परम्परा के अन्तर्गत द्वैत मत के प्रतिपादक आचार्य।

5.11 सहायक उपयोगी पाठ्यसमग्री

1. रानाडे रामचन्द्र दत्तात्रेय, उपनिषद्-दर्शन का रचनात्मक सर्वेक्षण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
2. राधाकृष्णन सर्वपल्ली, उपनिषदों की भूमिका, अनु. रामनाथ शास्त्री, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली-1968।
3. रामगोविन्द त्रिवेदी, वैदिक साहित्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
4. एफ. मैक्समूलर, द सेक्रेड बुक ऑफ द ईस्ट, भाग-1, दि उपनिषद्, खण्ड-1।
5. हिरियन्ना एम., भारतीय दर्शन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-1965।
6. ईशदि नौ उपनिषद्, गीता प्रेस संस्करण।
7. छान्दोग्य एवं बृहदारणयक उपनिषद्, गीता प्रेस संस्करण।

5.12 बोध प्रश्न

1. उपनिषद् वैदिक साहित्य के अभिन्न अंग हैं स्पष्ट कीजिए।
2. उपनिषदों के स्वरूप से सम्बन्धित भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों के मतों की तुलना कीजिए।
3. किस तरह उपनिषदों में भारतीय दर्शन बीजरूप में समाहित है, स्पष्ट करें?
4. उपनिषद् आत्म-विद्या की प्रतिपादक हैं। टिप्पणी लिखें।
5. उपनिषद् गुरु-शिष्य संवाद की ज्ञानात्मक उपलब्धि हैं। इस कथन की पुष्टि कीजिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY